

## इकाई 2 सौन्दर्य के भाग—वय, रूप, वचन, हाव आदि

### इकाई की रूपरेखा

- 2.0 उद्देश्य
- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 सौन्दर्य के भाग
  - 2.2.1 वय
  - 2.2.2 रूप
  - 2.2.3 वचन
  - 2.2.4 हाव
- 2.3 सारांश
- 2.4 शब्दावली
- 2.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें
- 2.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

### 2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप—

- सौन्दर्य के भाग वय के बारे में जान सकेंगे।
- सौन्दर्य के भाग रूप के बारे में जान सकेंगे।
- सौन्दर्य के भाग वचन के बारे में जान सकेंगे।
- सौन्दर्य के भाग हाव के बारे में जान सकेंगे।

### 2.1 प्रस्तावना

सौन्दर्य के विषयगत रूप अनेक है फिर भी उसको सीमाओं में बाँधा जा सकता है। वर्तमान समय के सौन्दर्यशास्त्री इसके भागों के सन्दर्भ में कुछ भी कहने में समर्थ नहीं हो पाते हैं। कोई उसे प्रकृति के परिवर्तनों में उपलब्ध बताता है तो दूसरों प्राणी के अभिव्यक्तियों में उसकी खोज करते हैं। कोई व्यक्ति सुन्दरता को निरन्तर परिवर्तनशील मानता है तो दूसरा परिवर्तनशीलता में ही सौन्दर्य की संभावना करता है। इसीलिए महाकवि श्रीहर्ष ने नैषधीयचरितम् में कहा है कि 'क्षण-क्षणं यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतया: अर्थात् जो वस्तु प्रतिक्षण नवीन लगे वही सुन्दरता का रूप है। इसको लेकर नवीनता को ही सुन्दरता का घटक तत्त्व कहने की भी प्रथा है।

प्रसिद्ध आयुर्वेदिक ग्रन्थ चरक संहिता के वाजीकरण प्रकरण में बताया है कि प्रत्येक युवक के मन में अपने जीवन साथी का एक बिम्ब वय, रूप वचन एवं हाव के रूप में निहित होता है जिसका साम्य पाने पर ही वह व्यक्ति किसी की ओर आकर्षित होता है। इस इकाई में सौन्दर्य के भाग वय, रूप, वचन एवं हाव का विवेचन किया जाएगा।

## 2.2 सौन्दर्य के भाग

चरकसंहिता में निरूपित वय, रूप, वचन एवं हाव नामक चारों तत्त्व ही वस्तुतः सौन्दर्य के घटक तत्त्व हैं जो किसी भी सुन्दर वस्तु में स्वरूपतः विद्यमान रहते हैं। चरकमुनि की यह उक्ति इस बात का पुष्ट प्रमाण है कि द्वितीय शताब्दी ईसा पूर्व के पहले सौन्दर्य-विषयक सिद्धांत का विवेचन विषयनिष्ठ भी होता था। इसके आधार पर सौन्दर्य विषयक व्यापक सिद्धांत की कल्पना की जा सकती है। सौन्दर्य के स्वरूपाधायक उक्त चारों तत्त्व ही निखिल ललितकलाओं के आधारभूत तत्त्व प्रतीत होते हैं, जिनपर विविध कलाओं का शास्त्र खड़ा किया जा सकता है। हम किसी भी ललित कला को क्यों न ले वह इन चारों से युक्त किसी अन्य तत्त्व पर आधारित हो नहीं सकती तथा कलाओं के आधारभूत तत्त्व इन चार में ही समाहित हो सकते हैं। यद्यपि ये चारों ही तत्त्व जिस किसी भी रूप में प्रत्येक कला में विद्यमान अवश्य रहते हैं पर विशेष रूप से इनमें से कोई एक ही कला विशेष का प्रमुख घटक तत्त्व बनता है। इस दृष्टि से वय-नृत्यकला का, रूप-चित्रकला का, वचन-संगीत कला का तथा हाव-मूर्तिकला का सर्वस्व होने से प्रमुख तत्त्व है। पर साहित्यकला का चूडान्त उत्कर्ष नाट्य है, ये चारों तत्त्व उसमें समवेत रूप से विद्यमान होते हैं। सम्भवतः इसीलिए कविकुलगुरु ने मालविकाग्निमित्रम् में कहा है—‘**नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।**’ अर्थात् लोगों की रुचियाँ परस्पर भिन्न होती हैं इसीलिए रसिकजन अपनी रुचि के अनुसार भिन्न-भिन्न कलाओं को आश्रयण करते हैं परन्तु नाट्य यह कला है जिस एक ही से नाना प्रकार की रुचियों से समन्वित सहृदयों का समाहार हो जाता है।

### 2.2.1 वय

वय अवस्था को कहते हैं जिसका सम्बन्ध काल से होता है। वैदिक ऋषियों ने ऊषःकाल को एक युवती के रूप में निरूपित किया है जिसका अनुगमन करता हुआ सूर्य उसका प्रणयी माना गया है। प्रत्येक वस्तु एवं व्यक्ति के जीवन में एक काल ऐसा आता है जब उसमें निहित सभी शक्तियाँ उद्भूत होने लगती हैं और उसके अंग-प्रत्यंग पूर्णता को प्राप्त होकर खिल उठते हैं तथा उस वस्तु या व्यक्ति में सुषमा बिखरने लगते हैं, जिसे सौन्दर्य कहा जाता है। इस प्रकार वय वस्तु या व्यक्ति के आभ्यन्तर बाह्य स्वरूप के चूडान्त उत्कर्ष की अवस्था की संज्ञा है। जिससे यौवन परिलक्षित होता है। यो तो यौवन की अभिव्यक्ति सभी कलाओं का विषय है किन्तु नृत्यकला का तो यह सर्वस्व ही है। नृत्यांगना स्वयं युवती होती है तथा अपनी नृत्यकला के द्वारा प्रणय, राग, संभोग, विप्रलम्भ, अर्चना आदि जिन भावों की वह अभिव्यक्ति अपने नृत्यकला के माध्यम से करती है वे सभी यौवन के ही होते हैं। किन्तु मात्र यौवन की अभिव्यक्ति से नृत्यकला पूर्णता को नहीं प्राप्त कर पाती। वह कला का रूप तभी धारण करती है जब उसमें रूप, वचन एवं हाव की अभिव्यंजना नृत्य से ही होने लगे और सहृदय प्रेक्षक को ऐसा लगे कि मन्द-मन्द मुस्कान, मधुर गुंजन एवं विविध आंगिक भंगिमाओं से सवलित किशोर एवं किशोरी राधाकृष्ण की नृत्य कर रहे हैं। तभी सही नृत्यकला पूर्णता को प्राप्त करती है और अर्थों में कला कहलाती है। नृत्यकला के अतिरिक्त चित्र मूर्ति एवं साहित्य में यौवन के अतिरिक्त वय के अन्य अंगों को भी निरूपित किया गया है जैसे पैंजनी पहने हुए शिशु राम का ठुमक-ठुमक चलने का वर्णन तुलसीदास ने अत्यन्त मनोहारी किया है तो बाणभट्ट के द्वारा किया हुआ जाबालि ऋषि की वृद्धावस्था का वर्णन कम हृदयग्राही नहीं है।

नायिका—भेद का विवेचन करने वाले आचार्य नायिकाओं के मुग्धा—मध्या प्रगल्भा आदि भेदों का निरूपण वय के अनुसार ही करते हैं तथा वय सन्धि को लांघने को ही कवि लोग यौवन में प्रवेश मानते हैं इसलिए वय पद के यौवन का बोधक होने में कोई मतभेद नहीं होना चाहिए।

## 2.2.2 रूप

यद्यपि रूप को सौन्दर्य का पर्याय मानकर उसकी कई प्रकार की परिभाषाएँ की गई हैं जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। पर यहाँ रूप से अभिप्राय अंग—प्रत्यंग की बनावट से है जिसे आकृति एवं अवयव संस्थान कहते हैं क्योंकि चाक्षुष प्रत्यक्ष उसी का होता है। किसी भी वस्तु की एक विशेष प्रकार की बनावट होती है चाहे वह स्थूल हो या सूक्ष्म अथवा सजीव हो या निर्जीव। आज के सन्दर्भ में कैमरा जिसको अपने में उतार ले वही रूप है। इसमें आकार के साथ—साथ रंग का भी योग होता है और जिसके हल्के और गहरे प्रयोग से चित्रकार रूप के द्वारा भावों की अभिव्यंजना करते हैं। मनुष्य में रूप से आकृति की बनावट अर्थात् कट का ग्रहण होता है। शकुन्तला को पहली बार देखकर दुष्यन्त कह उठता है—‘मानुषीषु कथं वा स्यादस्य रूपस्य सम्भवः’ अर्थात् अंगों की यह दिव्य बनावट मनुष्यों में कहाँ से आ गयी। उसका अनुमान सही निकला क्योंकि वह मेनका अप्सरा की सन्तान थी जिसकी आकृति का प्रभाव शकुन्तला पर था। यही नहीं उर्वशी के रूप को देखकर राजा पुरुरवा अभिभूत हो जाता है और सोचने लगता है कि इसे निश्चित रूप से वृद्ध प्रजापति ने तो नहीं बनाया है। क्योंकि एक तो निरन्तर वेद का पारायण करते रहने से यह ब्रह्मा जड़ हो गया है। इसमें नवनवोन्मेषशालिता कहाँ से आ सकती है। दूसरे अतिवृद्ध हो जाने के कारण रूप, रस, गन्ध, स्पर्शादि भोग्य विषयों के प्रति उसमें आकर्षण भी कहाँ से आ सकता है। ऐसा लगता है कि निरन्तर सृष्टि करते—करते थक जाने के कारण किसी दिन ब्रह्मा ने अवकाश ग्रहण कर लिया था और अपना कार्यभार चन्द्रमा को सौंप दिया था जिसने इसके रूप को बनाया और उसमें अपनी कान्ति भी डाल दी। अथवा ब्रह्मा के हाथ से जब व्यक्तियों की आकृतियाँ बिगड़ने लगी तो कामदेव को अच्छा नहीं लगा और उन्होंने स्वयं आकर आग्रह किया—‘पितामह आप रहने दीजिए मैं आपकी मदद कर देता हूँ और उसने अपनी श्रृंगारमयी भावनाओं के अनुरूप इसकी रचना कर दी। अथवा उर्वशी के रूप का निर्माण तो वस्तुतः वसन्त ऋतु के अधिष्ठाता देवता के द्वारा हुआ होगा जिसके आते ही सूखी टहनियाँ भी लहरा उठती है और सर्वत्र सुषमा व्याप्त हो जाती है—

अथवा नेषं तपस्विनः सृष्टिरित्यवैमि —

अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः,

श्रृंगारेकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।

वेदाभ्यासजडः कथन्नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो,

निर्मातुं प्रभवेन् मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः।।

इसीलिए शकुन्तला के निर्माण में ब्रह्मा सावधान दिखते हैं। उन्होंने तब तक की बनाए हुए चन्द्रज्योत्स्ना, चकोर आदि अनेक सौन्दर्याधायक तत्वों से समुचित सामग्री अपने मन में एकत्र कर और बिना हाथ लगाये (साक्षात् मन से) ही इसकी रचना कर दी है। क्योंकि ब्रह्मा के रचना कौशल एवं इसके अंग सौष्टव को देखते हुए यही कहना होता है कि ऐसी कोई दूसरी नायिका हुई ही नहीं—

चित्ते निवेश्य परिकल्पितसत्त्वयोगा,  
रूपोच्चयेन मनसा विधिना कृता नु।  
स्त्रीरत्नसृष्टिरपरा प्रतिभाति सा मे,  
धातुर्विभुत्वमनुचिन्त्य वपुश्च तस्याः।।

महाकवि बाणभट्ट ने बिना हाथ लगाये साक्षात् मन से ही कालिदास की रूप निर्माण की कल्पना के रहस्य का उद्घाटन कादम्बरी में चाण्डाल कन्या के रूप के वर्णन के प्रसंग में किया है। निश्चित रूप से प्रजापति ने इसे बिना हाथ से छुए केवल मन से ही बनाया है। अन्यथा हाथ के स्पर्श से लावण्य में कोई न कोई कमी अवश्य आ जाती और अवयवों में सुश्लिष्टता नहीं रह पाती—**अन्यथा कथमियमविलिष्टता लावण्यस्य। नहि करतलस्पर्शक्लेशितानामवयवानामीदृशी भवति कान्तिः।**

यह रूप ही सौन्दर्य का घटक दूसरा तत्व है, जो सामान्य रूप से तो सभी कलाओं में विद्यमान रहता है किन्तु इसका प्रमुख क्षेत्र चित्रकला है। रूप की विविधता एवं नवनवोन्मेषशालिता ही चित्रकार की प्रतिभा के द्योतक है। पर इसमें भी सौन्दर्य के अन्य घटक तत्व वय, वचन एवं हाव की अभिव्यंजना परमावश्यक है। वय रूप की चरम परिणति से तथा हाव उसकी भंगिमाओं से अभिव्यंजित होते हैं। परन्तु चित्रकला की पूर्णता तभी मानी जाती है जब वह स्वयं मानो बोलने लगे। कलाविदों में अग्रणी कालिदास ने रूप में ही रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द नामक अन्य भोग्य तत्वों का भी समावेश कर उसका भव्य निरूपण किया है। वह कहते हैं कि शकुन्तला का यह रूप अनघ है। आप पाप को कहते हैं जो अपने रूप के प्रति गर्व की भावना से उत्पन्न होता है। ऐसा तभी होता है जब उसके रूप की अभिशंसा हो। शकुन्तला का रूप अनघ इसलिए है कि अभी तक किसी ने उसके रूप को निहार कर उसकी अभिशंसा नहीं की है। फलतः उसे अपने रूप की उत्कृष्टता का भान भी नहीं है। अपने रूपातिशय का भान ही अब अर्थात् अनर्थ का कारण होता है क्योंकि उससे रूपवान् व्यक्ति के मन में आकांक्षा उत्पन्न होती है कि लोग उस पर 'लुब्ध' हो। शकुन्तला का रूप उस पुष्प के समान है जिसका आधान अभी भौरों ने भी नहीं किया है। वह तो उस किसलय के समान है जिसे उसके वृक्ष से तोड़कर हस्तगत कर लेने की इच्छा अभी किसी को नहीं हुई है। वह शाणोल्लीढ उस मणि के समान है जिसे भेदकर पहनने के लिए किसी ने अभी मणि का छेदन—कार्य नहीं किया है तथा उस शहद के समान है जिसे मधुमक्खियों ने भी अभी चखा नहीं है। इसका उपभोग करने का सौभाग्य पता नहीं विधाता किसको प्रदान करेगा? किन्तु इतना तो निश्चित ही है कि इसका यह निःकलुष रूप जिसे भी मिलेगा वह उसके जन्मजन्मान्तर के संचित निखिलपुण्य का एकमात्र फल होगा—

अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै—  
रनाविद्धं रत्नं मधु नवमनास्वादितरसम्।  
अखण्डं पुण्यानां फलमिव च तद्रूपमनघं  
न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः।।

### 2.2.3 वचन

वचन अथवा बोली स्वतन्त्र रूप से भी सौन्दर्य की आधायिका होती है। कालिदास प्रभृति कवियों ने जंगल में कटे हुए बांस के छेद में हवा भरने से उत्पन्न होने वाला

ध्वनि में भी संगति का सा माधुर्य वर्णित किया है। वसन्त ऋतु में प्रफुल्लित आम्रमंजरियों की मादक गन्ध से आप्लावित हो कोयल जब कूजती है तो उसकी बोली किसके मन को हरण नहीं कर लेती। सौन्दर्य के आधान में बोली के महत्व को हम तब आंकते हैं जब किसी सर्वांगसुन्दर के प्रति आकृष्ट हो उस ओर उन्मुख होते हैं और फटे बांस जैसी उसकी आवाज सुनकर उससे विमुख हो जाते हैं। लय, स्वर और मूर्च्छनाओं में बंधकर यही वचः संगीत की सृष्टि करता है जिसे ललितकलाओं में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसका अपना शास्त्र है जो साहित्य की ही तरह अत्यन्त विशद एवं परम महनीय है। किन्तु वचः जब वय, रूप और हाव के योग से ऐसा समां बांधता है कि वाक् से ही विविध भंगिमा लिए पूर्ण उत्कर्ष को प्राप्त रूप की झांकी प्रस्तुत हो जाये, तभी वह संगीत कला के स्तर तक पहुँच पाता है। इसे ही भरतमुनि वाङ्मयी सिद्धि कहते हैं। वचः का सिद्धांत अत्यन्त व्यापक है। इस विषय के अनुसन्धान ने अनेक शास्त्रों को जन्म दिया है जिनमें व्याकरण और संगीत प्रमुख हैं। दोनों ही वाक् की जिन चार अवस्थाओं का निरूपण करते हैं वे हैं परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी। किन्तु दोनों की विवेचन प्रणाली सर्वथा विपरीत होती है, व्याकरण परा से आरम्भ होकर पश्यन्ती के अनन्तर उत्पद्यमान मन्द स्वर रूप नाद के ही व्यक्ति के ध्वनियंत्र के द्वारा मुख के विविध स्थलों से टकराकर बिखर जाने से उत्पन्न वैखरी अवस्था में परिणत उच्चार्यमाण वर्णों से निष्पन्न पद तथा उनके भी समूहात्मक वाक्य के विविध रूपों एवं तद्विषयक सिद्धान्तों का ही विवेचन प्रस्तुत करता है। वैयाकरण मुनि पाणिनि का विधान है—

**आत्मा बुद्ध्या समेत्यर्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया**

**मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम् ॥**

**मारुतस्तूरसि चरन् मन्द्रं जनयति स्वरम् ।**

**प्रातः सवनयोगं तं छन्दो गायत्रमाश्रितम् ॥**

**सोदीर्णो मूध्नर्यभिहतो वक्त्रमापद्य मारुतः ।**

**वर्णान् जनयते तेषां विभागः पंचधा स्मृतः ॥**

**स्वरतः कालतः स्थानात् प्रयत्नानुप्रदानतः ।**

**इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तं निबोधत ॥**

इसके विपरीत संगीतशास्त्र का समारम्भ वाक् की अन्तिम अवस्था वैखरी से ही होता है। किन्तु उसका लक्ष्य नाद अर्थात् मध्यमा से होता हुआ आहतनाद अर्थात् पश्यन्ती को भी लाँघकर अनाहत नाद परावस्था तक पहुँचता है। यह स्पष्ट है कि व्याकरण का व्यापक क्षेत्र वैखरी वाक् की विशाल परिणति है। महाभाष्यकार पतंजलि का कहना है कि बृहस्पति के गुरु और इन्द्र के अध्येता होने पर भी दिव्य वर्ष सहस्र तक निरन्तर अध्ययन—अध्यापन के अनन्तर भी वाक् की विशालता का अन्त नहीं पाया जा सका। श्रुति भी कहती है—‘वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे।’ भरतमुनि का संकेत सर्वथा समुचित है कि निखिल शास्त्र वाङ्मय ही है क्योंकि वे वाक् में ही सन्निविष्ट है—“वाङ्मयानि हि शास्त्राणि वाङ्मयानि तथैव च।” जहाँ तक संगीत का संबंध है उसके विषय में छान्दोग्य उपनिषद् की स्पष्ट उक्ति है कि शब्द के विवर्त रूप वेद के निखिल मन्त्रों का समाहार ऊँ नामक प्रणव में हो जाता है जो अक्षर होने के साथ—साथ उद्गीथ भी है—“ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत” उद्गीथ का अर्थ उसकी गेयात्मकता ही है जिसके रहस्य का उद्घाटन करते हुए वही अर्थात् छान्दोग्य उपनिषद् में बताया गया है कि निखिल भूतों का रस पृथ्वी है, पृथ्वी का रस जल है, जल का रस औषधियाँ हैं तथा औषधियों का रस ही पुरुष होता है। इस पुरुष का भी

रस वाक् तथा वाक् का ऋक् एवं ऋक् का भी रस साम होता है इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण स्वयं को सामवेद कहते हैं—वेदानां सामवेदोऽस्मि। उस साम का भी रस अर्थात् सारतत्त्व ही उद्गीथ है। वह सभी रसों में रसतम तथा वरार्ध्य अर्थात् महनीय रस है—'एषां भूतानां पृथ्वी रसः, पृथिव्या आपो रसः अपां औषधयो रसः, औषधीनां पुरुषो रसः पुरुषस्य वाग्रसः, वाचो ऋग्रसः ऋचः साम रसः, साम्न उद्गीथो रसः, स एव रसानां रसतमः वरार्ध्यो अष्टमो य उद्गीथः।' (छान्दोग्य उपनिषद् 1/1/2)

वाक् का वही प्रकार और रूप कलात्मक होता है जो सहृदय श्रोता की हृदय को झंकृत करता हुआ उसकी अन्तरात्मा चैतन्य तक को उन्मीलित कर देता है। सौन्दर्यानुभूति के अध्यात्मवादी व्याख्याताओं ने इसीलिए उसे स्वात्मपरामर्श कहा है। वचः का दर्शन अतिगहन एवं परमहस्यमय है जिसका यथार्थ बोध योगी लोग ही कर पाते हैं। साहित्यकार इसे ही आत्मा की कला मानकर उसकी उपासना करते हैं—'वन्देमहि च तां वाचममृतामात्मनः कलाम्।' (उत्तररामचरित 1/1) अमृत पद से आचार्य भवभूति का अभिप्राय यहाँ मरणधर्मरहित अनश्वर मात्र नहीं है अपितु आत्मा की ही अंशभूत वह वाक् अमृत के समान आस्वादनीय निखिल पदार्थों से भी अत्यधिक विलक्षणतया आस्वाद्य है। अतएव वह वन्दनीय अर्थात् निखिल आस्वाद्यः पदार्थों में अभिनन्दनीय है, अतएव समुपासनीय है। आचार्य दण्डी उसका साक्षात्कार एक ज्योति के रूप में करते हैं। जिसके बिना यह निखिल जगत अन्धतिमिराच्छन्न ही बना रहता—

इदमन्धं तमः कृत्स्नं जायेत भुवनत्रयम् ।  
यदि शब्दाहवयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते ॥

## 2.2.4 हाव

भाव ही जब शब्दों से अभिहित न होकर व्यक्ति के वचनादान विहरण आदि क्रियाओं से व्यक्त होने लगते हैं तो उन्हें हाव कहते हैं। हावयतीति हावः की व्युत्पत्ति से ह धातु से घञ् प्रत्यय होकर भाव पद व्युत्पन्न होता है जिसका शाब्दिक अर्थ है जो मानो बुला रहा है अर्थात् सहृदय के मन को अपनी ओर हठात् आकृष्ट कर रहा है। हावों की इस मनोहारिता को कलात्मक रूप देने के लिए कलाकार इनको मूर्ति के रूप में अभिव्यक्त करता है। इसे ही मूर्तिकला कहते हैं जो होती तो हाव रूप है किन्तु वय, रूप एवं वचन तीनों को अपने में समेट कर ही सहृदय के मन रूपी सरोवर को आन्दोलित करती हैं। मूर्ति के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह युवावस्था को ही प्रकट करे जो वयोजन्य सौन्दर्य का चरम बिन्दु होता है। अपितु हाव में सन्निहित वय की भावानुरूपता ही यहाँ अपेक्षित होती है। मूर्ति में रूप तो निहित होता ही है, जो हाव के अनुरूप होकर उसमें लयात्मकता की सृष्टि करता है तभी उसमें वचः का भी योग हो जाता है और ऐसा लगता है कि यह मूर्ति हमसे कुछ कह रही है। मूर्ति में हाव के साथ-साथ वय, रूप और वचः का भी समुन्मेष कराते हुए सौन्दर्य की सृष्टि का माध्यम बनती है। हावों की अभिव्यक्ति का माध्यम यद्यपि दृश्य तथा श्रव्य उभयविध काव्य भी होता है तथापि साहित्य में भाषा के प्रयोग से हाव की अभिव्यक्ति मूर्ति की अपेक्षा शिथिल रूप में होती हैं इसीलिए हाव साहित्य में जहाँ अंग से रूप में समाहित होता है वहाँ मूर्तिकला का अंगीभूत तत्व हाव ही होता है। उर्दू की शायरी का बहुत बड़ा अंश मात्र हाव की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जिसे वहाँ अदा के नाम से अभिहित किया जाता है। समुद्र देशों की मूर्तिकला भी चित्रकला के समान ही युवावस्था अर्थात् शृंगारव्यंजक हावों की अभिव्यक्ति बड़ी विविधता के साथ करती है।

दशरूपककार ने हाव भाव और हेला को स्त्रियों में यौवन के आगमन से होने वाले शारीरिक अलंकार माना है जो सत्वभाव की बहुलता से उत्पन्न होते हैं-

**यौवने सत्वजाः स्त्रीणांलकारास्तु विशन्तिः।**

**भावो हावश्च हेला च त्रयस्तत्र शरीरजाः।।**

(दशरूपक, 2/30)

किन्तु उनका यह निरूपण मात्र शृंगार वह भी युवती नायिका को लक्षित कर हुआ है। हाव बहुत व्यापक वस्तु है जिसे मात्र शृंगार में नहीं बांधा जा सकता। अपितु वह सभी रसों एवं भावों की आंगिक अभिव्यक्ति को प्रकट करता हुआ मूर्तिकला का मुख्य आधार बनता है। शब्द के द्वारा अभिव्यक्ति होकर भाव उतना प्रभावशाली नहीं हो पाता जितना वह आंगिक चेष्टाओं से अभिव्यक्त होकर हो जाता है। आचार्य आनन्दवर्धन का कहना है कि कोई भी भाव व्यंग्य होकर जिस चारुता की अनुभूति कराता है, वाच्य होने पर नहीं करा पाता क्योंकि उनकी धारणा है कि अलंकारपरक रचना करने में कुशल महाकवियों की अभिव्यक्तियों में प्रतीयमान का संस्पर्श ही उनमें शोभा का मुख्यतया आधान करता है-

**मुख्या महाकविगिरामलंकृतिभूतामपि।**

**प्रतीयमानच्छायैव भूषा लज्जेव योषिताम्।।**

हाव से होने वाली जो व्यंजना है वह प्रेक्षक के मन पर प्रभावातिशय का आधान करती है। यही कारण है कि हाव में स्वतंत्र रूप से एक कला के मुख्य आधायक तत्त्व होने की योग्यता है। हाव की भूमिका चित्र और नृत्य कलाओं में भी कम महत्त्व की नहीं होती। विशेष रूप से नृत्यकला में आंगिक चेष्टाओं की एक परम्परा ही सृष्ट हो जाती है। किन्तु भावाभिव्यक्ति के द्वारा रसनिष्पत्ति के लिए हाव भले ही अधिक उपयोगी हो पर प्रभाव की दृष्टि से वह मूर्ति की अपेक्षा नृत्य अनतिशायी ही होता है तथा मूर्तिकला की अपेक्षा उसका क्षेत्र भी संकुचित ही होता है। चित्रकला में रूप ही विशेष रूप से हावी होता है।

**बोध प्रश्न-1**

**क) निम्नलिखित प्रश्नों के ठीक उत्तरों पर सही (√) का चिन्ह लगाइयें।**

- सौन्दर्य के भाग कितने हैं। (चार/तीन)
- वय किसे कहते हैं। (अवस्था/बोली)
- अवस्था का सम्बन्ध किससे होता है। (काल/भेद)

**ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।**

- रूप का अभिप्राय ..... है। (अंग-प्रत्यंग के बनावट से/शरीर से)
- वच शब्द से अभिप्राय ..... है। (वाणी से/मानव से)
- भाव जब क्रियाओं से व्यक्त होता है तब..... कहलाता है। (हाव/वय)

**बोध प्रश्न-2**

1. हाव को स्पष्ट कीजिए।

.....

2. वय को स्पष्ट कीजिए।

**अभ्यास प्रश्न**

सौन्दर्य के प्रकार पर विस्तृत विचार कीजिए।

---

**2.3 सारांश**

---

साहित्य भी कला है जिसमें अन्य प्रायः सभी ललित कलाओं का समावेश हो जाता है। साहित्य अन्य कलाओं से विलक्षण भी है क्योंकि कलाओं के चारों आधायक तत्त्व वय, रूप, वचः एवं हाव का समावेश सरलता से हो जाता है इसलिये सौन्दर्य अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में साहित्य सर्वातिशायी माना गया है। जिसमें वय अर्थात् एक विशेष अवस्था अर्थात् युवावस्था, रूप अर्थात् आकृति की बनावट कहते हैं, वचः से अभिप्राय बोली से है तथा हाव आंगिक भावाभिव्यक्तियों को कहते हैं जो देखने-बोलने, उठने-बैठने तथा हसने आदि में परिलक्षित होते हैं। इस इकाई में इन चारों का सौन्दर्य के सन्दर्भ में विवेचन किया गया है।

---

**2.4 शब्दावली**

---

वय	—	अवस्था
रूप	—	आकृति की बनावट
भाव	—	आंगिक

---

**2.5 कुछ उपयोगी पुस्तकें**

---

- अभिनवभारती के तीन अध्याय, अभिनवगुप्त, सम्पा. नगेन्द्र, हिन्दी विभाग दि.वि. दिल्ली प्र.स. 1960
- औचित्यविचारचर्चा, क्षेमेन्द्र, व्याख्याकार ब्रजमोहन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1982
- काव्यप्रकाश मम्मट, सम्पा. एवं व्याख्या, विश्वेश्वर सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी
- काव्यादर्श, दण्डी, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. क्षेमेन्द्रकुमार गुप्त, मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास, दिल्ली, 1973



- काव्यालंकार भामह, सम्पा. एवं व्याख्या देवेन्द्रनाथ शर्मा, बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद् पटना, 1985
- काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, वामन, सम्पा. एवं व्याख्या. डा. वेचन झा, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी,
- काव्यानुशासन, हेमचन्द्र, सम्पा. एवं व्याख्या डा. रामानन्द शर्मा, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2000
- ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन, विश्वेश्वरकविचन्द्र सिद्धान्त शिरोमणि, ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी, 1998
- नाट्यशास्त्र, भरतमुनि, बटुकनाथ शर्मा एवं बलदेव उपाध्याय चौ.सं.संस्थान, वाराणसी, 1980
- अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक अध्ययन , काशीनाथ द्विवेदी, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी।
- ध्वन्यालोक लोचन अभिनवगुप्त, ध्वन्यालोक की टीका, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई 1911
- वक्रोक्तिजीवितम्, कुन्तक, राधेश्याम मिश्र, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, 2007
- व्यक्तिविवेक, महिमभट्ट, रेवाप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 1987
- सरस्वतीकण्ठाभरण, भोज, कामेश्वर नाथ मिश्र, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी 1979
- साहित्यदर्पण, विश्वनाथ, व्याख्याकार डा. सत्यव्रत सिंह, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, 1976
- भारतीय साहित्यशास्त्र भाग 1, 2 बलदेव उपाध्याय, भा. व. उ. प्रसाद परिषद् काशी वि. सं. 2007
- भारतीय सौन्दर्यदर्शन, ब्रजमोहन चतुर्वेदी, मध्यप्रदेश संस्कृत अकादमी, मध्यप्रदेश, 1998
- संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, बलदेव उपाध्याय, अष्टम खण्ड काव्यशास्त्र, उ.प्र.सं.सं.लखनऊ,
- कालिदास ग्रन्थावली, सीताराम चतुर्वेदी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, 1960
- अभिज्ञान शाकुन्तलम्, कपिलदेव द्विवेदी, साहित्य संस्थान इलाहाबाद

## ENGLISH REFERENCE

- 1) B.M.Chatturvedi, **Some unexplored aspects of the Rasa Theory**, vidyanidhi Prakashan, ed.1906
- 2) S.K De, **History of Sanskrit Poetics.**,Firma KLM PVT Ltd.Calcutta,1976.

- 3) Raniero Gnoli, **The Aesthetic experience according to Abhinavagupta**; chowkhamba Sanskrit Series, Varanasi, 1968
- 4) P.V Kane, **History of Sanskrit Poetics**,MLBD,Delhi,f.ed. 1961
- 5) A.B Keith, **History of Sanskrit literature**, oxford, 1928
- 6) V.Raghvan, **The Number of Rasas**, University of Madras, 1949, Adyar Library Adyar,1940
- 7) V.Raghvan,**Some Concepts of Alankar Shastras**, Adyar Library, Adyar, 1942

---

## 2.6 बोध/अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

---

### बोध प्रश्न-1

- क) (i) चार (ii) अवस्था (iii) काल  
ख) (i) अंग-प्रत्यंग के बनावट से (ii) वाणी से (iii) हाव

### बोध प्रश्न-2

क) भाव ही जब शब्दों से अभिहित न होकर व्यक्ति के वचनादान विहरण आदि क्रियाओं से व्यक्त होने लगते हैं तो उन्हें हाव कहते हैं। हावयतीति हावः की व्युत्पत्ति से ह धातु से घञ् प्रत्यय होकर भाव पद व्युत्पन्न होता है जिसका शाब्दिक अर्थ है जो मानो बुला रहा है अर्थात् सहृदय के मन को अपनी ओर हठात् आकृष्ट कर रहा है। हावों की इस मनोहारिता को कलात्मक रूप देने के लिए कलाकार इनको मूर्ति के रूप में अभिव्यक्त करता है। इसे ही मूर्तिकला कहते हैं जो होती तो हाव रूप है किन्तु वय, रूप एवं वचन तीनों को अपने में समेट कर ही सहृदय के मन रूपी सरोवर को आन्दोलित कर पाती। मूर्ति के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह युवावस्था को ही प्रगट करे जो वयोजन्य सौन्दर्य का चरम बिन्दु होता है। अपितु हाव में सन्निहित वय की भावानुरूपता ही यहाँ अपेक्षित होती है। मूर्ति में रूप तो निहित होता ही है जो हाव के अनुरूप होकर उसमें लयात्मकता की सृष्टि करता है तभी उसमें वचः का भी योग हो आता है और ऐसा लगता है कि यह मूर्ति हमसे कुछ कह रही है। मूर्ति में हाव के साथ-साथ वयो रूप और वचः का भी समुन्मेष कराते हुए सौन्दर्य की सृष्टि का माध्यम बनती है। हावों की अभिव्यक्ति का माध्यम यद्यपि दृश्य तथा श्रव्य उभयविध काव्य भी होता है तथापि साहित्य में भाषा के प्रयोग से हाव की अभिव्यक्ति मूर्ति की अपेक्षा शिथिल रूप में होती हैं। इसीलिए हाव साहित्य में जहाँ अंग से रूप में समाहित होता है वहाँ मूर्तिकला का अंगीभूत तत्व हाव ही होता है। उर्दू की शायरी का बहुत बड़ा अंश मात्र हाव की अभिव्यक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है जिसे वहाँ अदा के नाम से अभिहित किया जाता है। समुद्र देशों की मूर्तिकला भी चित्रकला के समान ही युवावस्था अर्थात् श्रृंगारव्यंजक हावों की अभिव्यक्ति बड़ी विविधता के साथ करती है।

ख) वय अवस्था को कहते हैं जिसका सम्बन्ध काल से होता है। वैदिक ऋषियों ने ऊषःकाल को एक युवती नारी को एक युवती नारी के रूप में निरूपित किया है जिसका अनुगमन करता हुआ सूर्य उसका प्रणयी माना गया है। प्रत्येक वस्तु एवं

व्यक्ति के जीवन में एक काल ऐसा आता है जब उसमें निहित तमाम शक्तियाँ उद्भूत होने लगती हैं और उसके अंग—प्रत्यंग पूर्णता को प्राप्त होकर खिल उठते हैं तथा उस वस्तु या व्यक्ति में सुषमा बिखेरने लगते हैं जिसे सौन्दर्य कहा जाता है। इस प्रकार वय वस्तु या व्यक्ति के आभ्यन्तर बाह्य स्वरूप के चूडान्त उत्कर्ष की अवस्था की संज्ञा है। जिससे यौवन परिलक्षित होता है। यो तो यौवन की अभिव्यक्ति सभी कलाओं का विषय है किन्तु नृत्यकला का तो यह सर्वस्व ही है। नृत्यांगना स्वयं युवती होती है तथा अपनी नृत्यकला के द्वारा प्रणय, राग, संभोग, विप्रलम्भ, अर्चना आदि जिन भावों की वह अभिव्यक्ति अपने नृत्यकला के माध्यम से करती है वे सभी यौवन के ही होते हैं। किन्तु मात्र यौवन की अभिव्यक्ति से नृत्यकला पूर्णता को नहीं प्राप्त कर पाती। वह कला का रूप तभी धारण करती है जब उसमें रूप, वचन एवं हाव की अभिव्यंजना नृत्य से ही होने लगे और सहृदय प्रेक्षक को ऐसा लगे कि मन्द—मन्द मुस्कान, मधुर गुंजन एवं विविध आंगिक भंगिमाओं से संवलित किशोर एवं किशोरी राधाकृष्ण की नृत्य कर रहे हैं। तभी सही नृत्यकला पूर्णता को प्राप्त करती है और अर्थों में कला कहलाती है। नृत्यकला के अतिरिक्त चित्र मूर्ति एवं साहित्य में यौवन के अतिरिक्त वय के अन्य अंगों को भी निरूपित किया गया है जैसे पैजनी पहने हुए शिशु राम का टुमक—टुमक चलने का वर्णन तुलसीदास ने बड़ा मनोहारी किया है तो बाणभट्ट के द्वारा किया हुआ जाबालि ऋषि की वृद्धावस्था का वर्णन कम हृदयग्राही नहीं है। नायिका—भेद का विवेचन करने वाले आचार्य नायिकाओं के मुग्धा—मध्या प्रगल्भा आदि भेदों का निरूपण वय के अनुसार ही करते हैं तथा वयः सन्धि को लांघने को ही कवि लोग यौवन में प्रवेश मानते हैं। इसलिए वयः पद के यौवन का बोधक होने में कोई मतभेद नहीं होना चाहिए।

#### अभ्यास प्रश्न—

इस प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी स्वयं लिखें।

THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY